1937F How Can we be the Source of Peace

Kya ham Shantisagar ban sakate hain? (Hand-written manuscript, Published in Shanti Sindhu, 1937)

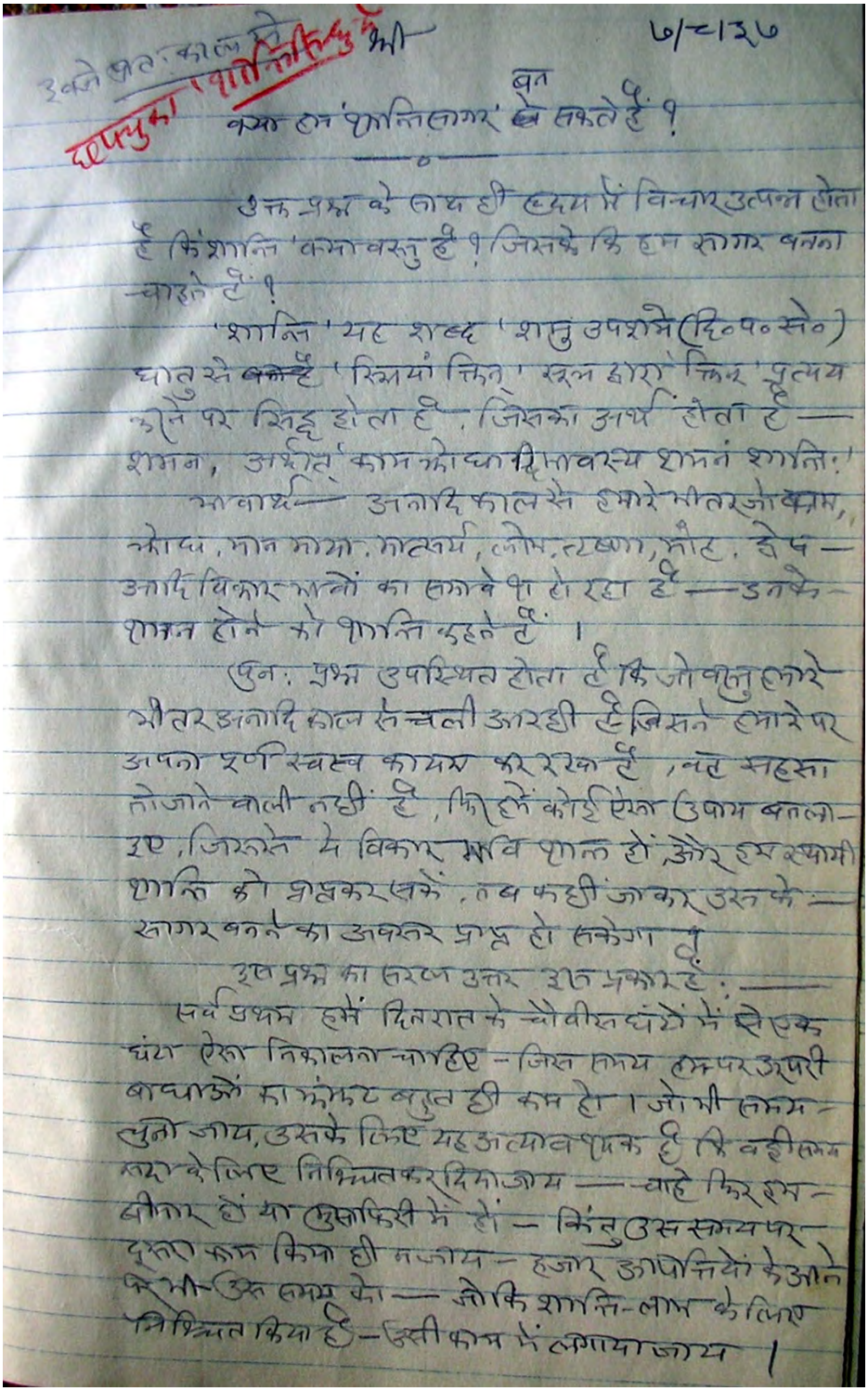

३ बजे प्रातःकाल से

छपचुका 'शान्तिसिन्धु' में

६/८/३६

क्या हम 'शान्तिसागर' बन सकते हैं?

उक्त प्रश्न के साथ ही हृदय में विचार उत्पन्न होता है कि 'शान्ति' क्या वस्तु है? जिसके कि हम सागर बनना चाहते हैं?

'शान्ति' यह शब्द 'शमु उपशमे (दि० प० से०)' धातु से 'स्त्रियां क्तिन्' सूत्र द्वारा 'क्तिन्' प्रत्यय होने पर सिद्ध होता है, जिसका अर्थ होता है — शमन, अर्थात् 'कामक्रोधादीनामवस्य शमनं शान्तिः'।

भावार्थ — अनादि काल से हमारे भीतर जो काम, क्रोध, मान, माया, मात्सर्य, लोभ, तृष्णा, मोह, द्वेष — आदि विकार भावों का समावेश हो रहा है — इनके शमन होने को शान्ति कहते हैं।

पुनः प्रश्न उपस्थित होता है कि जो वस्तु हमारे भीतर अनादि काल से चली आ रही है जिसने हमारे पर अपना पूर्ण स्वत्व कायम कर रखा है, वह सहसा तो जाने वाली नहीं है, कि हमें कोई ऐसा उपाय बतलाइए, जिससे ये विकार भाव शान्त हों, और हम स्थायी शान्ति को प्राप्त कर सकें, तब कहीं जाकर उसके — सागर बनने का अवसर प्राप्त हो सकेगा?

इस प्रश्न का सरल उत्तर इस प्रकार है: —

सर्वप्रथम हमें दिनरात के चौबीस घंटों में से एक घंटा ऐसा निकालना चाहिए — जिस समय हम पर ऊपरी बाधाओं का झंझट बहुत ही कम हो। जो भी समय चुना जाय, उसके लिए यह अत्यावश्यक है कि वही समय सदा के लिए निश्चित कर दिया जाय — चाहे फिर हम बीमार हों या मुसाफिरी में हों — किंतु उस समय पर दूसरा काम किया ही न जाय — हजार आपत्तियों के आने पर भी उक्त समय को — जो कि शान्ति-लाभ के लिए निश्चित किया है — उसी काम में लगाया जाय।

किन्तु— होता क्या है कि जब हमारा भी कोई काम आ पड़ा तो हम तुरन्त उस आरम्भ समय को छोड़ कर व्यर्थ के सांसारिक कार्यों में फंस जाते हैं। यहां यह कहा जा सकता है कि उस वक्त यदि नौकरी आदि की ड्यूटी हो — तो क्या किया जाय? पर इसके उत्तर में पहिले ही मैं कह चुका हूं, कि समय — सही निश्चित किया जाय, जिसमें पराधीनता न हो।

'यदि उस समय अपने किसी कुटुम्बी को भयंकर बीमारी आदि का भी अवसर आवे — तो उस का निर्वाह इस प्रकार किया जा सकता है — (१) कि आप बीमार की परिचर्या करते हुए भी अपने मन में इस प्रकार का चिंतवन कर सकते हैं, कि देखो — जीव अविचार के कारण भक्ष्याभक्ष्य का विचार नहीं करता है और बीमार पड़ने पर स्वयं अशान्ति के समुद्र में डूबता है और साथ में दूसरों को भी ले डूबता है। मुझे इससे यही सीख लेना चाहिए कि मैं स्वयं कोई ऐसा काम न करूं कि। जिससे मुझे भी इसी प्रकार स्वयं अशान्ति के सागर में गोते लगाने पड़ें, और अपने साथ दूसरों को भी अशान्ति में डालना पड़े।

(२) इस समय यह समीपवर्ती हमारा अमुक व्यक्ति बीमार है और हमारे से अधिक अशान्ति के समुद्र में यह गोते लगा रहा है, बेचैन हो रहा है — पीड़ा से तड़फ रहा है, और मुझसे भी अधिक शान्ति-लाभ की आवश्यकता है। भले ही इसने कोई गलती करके यह बीमारी पायी हो, अथवा — पूर्वोपार्जित कर्म द्वारा ही बीमार हुआ हो पर फिर भी यह इस समय करुणा का ही पात्र है, इस समय हम इसे शान्ति पहुंचा कर ही अपना कर्तव्य पूरा कर सकते हैं, अन्यथा नहीं। इस लिए हे आत्मन्, इस समय तू अपनी चिन्ता छोड़ और अपनी अवस्था से भी अधिक दुरवस्था में पड़े हुए इस साधारण जन की चिन्ता करे, तभी अपनी सच्ची ड्यूटी —

अदा कर सकते हैं। कि हमारे आचार्यों ने ~~[illegible]~~ कृत-कारित और अनुमोदना की समानता का जो पाठ हमें सिखाया है, वह किस समय काम आवेगा। ऐसे ही अवसरों की महत्ता को सामने रखकर ही तो कृत कारित में भेद नहीं किया गया है, इसलिए हे-मेरे आत्मन, जो तू इस समय स्वशान्ति के लिए-व्याकुल हो रहा है और सामने वाले बीमार पर मन में दुर्भाव पैदा कर रहा है सो यह तेरी अज्ञानता है। इस समय इसी में तुझे शान्ति लाभ मानना-चाहिए कि हम अपना कर्तव्य पूरा कर रहे हैं, क्योंकि कुटुम्ब की सेवा करना भी तो अपना कर्तव्य ही है।

(३) कि हमारे महर्षियों ने स्थितिकरण को भी तो धर्म का अंग माना है, यदि इस समय हमारे सामने रहते हुए भी इस बीमार के परिणामों में संक्लेश व-अशान्ति पैदा हो, तो कदाचित् यह विचार से भ्रष्ट न हो जाय, ~~[illegible]~~ कहीं यह समझकर कि-अपनी पूछने वाला कोई नहीं, हताश होकर के-आत्मघात न कर डाले- इसलिए इसे सहारा देकर स्थिर एवं स्वस्थ करना ही अपना कर्तव्य है और उस-में ही सच्ची शान्ति है। दूसरे ~~[illegible]~~ दुःख में सुखी वा दुःख में दुःखी होना ही तो सज्जनता है, कि मेरे आत्मन, क्यों स्व-शान्ति लाभ के पीछे-बेचारे इस तड़पते हुए को देखकर भी स्वयं बे-चैन होता है, दुःखी होता है और बीमार को उसके जीवन से निराश करता है। इसलिए इस-अवसर पर उसकी सेवा करना ही मेरा परम कर्तव्य होना चाहिए।

(४) और — इस बीमार के तो अशान्ति-उत्पादक पापकर्म का उदय है सो तो है ही, पर क्या उसके साथ मेरे भी पाप कर्म का उदय नहीं है? अवश्य है, जो मेरे में अशान्ति उत्पन्न कर रहा है।

और सिद्धान्त का नियम है कि प्रत्येक जीव का कर्मोदय किसी न किसी निमित्त से ही तो होता है, सो यथार्थ में मेरे ही पाप कर्म का इस समय उदय हो रहा है, जिससे ही मेरे अशान्ति उत्पन्न हो रही है। यदि ऐसा न मानें तो फिर हमारे स्थान पर हमारे पड़ौसी को अथवा अन्य किसी को क्यों पीड़ा नहीं हो रही है, दूसरा क्यों व्याकुल नहीं हो रहा है, मालूम पड़ता है कि मेरे ही पाप कर्मों का उदय है - इसलिए उसका फल तो भोगना ही चाहिए। क्योंकि कर्म रूप कर्ज़ के अदा कर देने पर ही सच्ची शान्ति हासिल हो सकती है। जब तक किसी के ऋण का भार हमारे पर स्थित है तब तक हमें शान्ति कहां नसीब हो सकती है और कहां हमें निराकुलता का स्वाद मिल सकता है। यह बेचारा तो मेरे पाप कर्मोदय से दुःख भोग रहा है यह सर्व अपराध मेरा ही है और मैं ही इस परिस्थिति का यथार्थ में उत्तरदायी हूं, इसलिए मेरा फ़र्ज़ है कि मैं इस बीमार की मनसा वाचा कर्मणा सेवा करूं और इसे निरोग बना दूं। यदि मैं इस की सेवा कर रहा हूं, तो इस पर मेरा कोई एहसान नहीं है।

(५) यह तो मेरी परीक्षा का समय है — यदि मैं इस बीमार की जरा सी देर सेवा-टहल करने में घबड़ा उठता हूं, अशान्ति के समुद्र में डुबकियां लगाने लगता हूं, तो अपने ऊपर ही ऐसी विपदाओं के आने पर मेरी क्या दशा होगी — ओह, तब तो मैं अवश्य ही फेल हो जाऊंगा और मेरा आत्मा किस काम का होगा - अतः जो यह मैं इस बीमार की सेवा आदि कर रहा हूं वह उसके ऊपर कुछ एहसान नहीं कर रहा हूं, किंतु स्वयं परीक्षा देकर अपनी उन्नति का निर्णय कर रहा हूं। विद्यार्थी जो शिक्षक को प्रतिमास परीक्षा देता है वह शिक्षक के ऊपर कोई एहसान थोड़े ही करता

है, अपनी ही वृद्धि करता है। शिक्षक के तो हम उनके ऋणी हैं, जो अपने अमूल्य समय को व्यय करके हमारी जाँच कर देते हैं और हमें बता देते हैं कि हम पहले से कितने आगे बढ़े हैं। इसी प्रकार यह बीमार भी हमारा परीक्षक बनकर हमारे सामने उपस्थित है और मैं उसके सामने परीक्षार्थ रूप में उपस्थित हूं। मुझे तो उसकी कृतज्ञता ही प्रकट करना चाहिए और उसका आभार मानना चाहिए।

इन उक्त पांच प्रकार की भावनाओं के करने से आपको बीमार की सेवा टहल करते हुए भी अवश्य ही शान्ति प्राप्त होगी और आप देखेंगे - कि जहां उक्त भावनाओं के अभाव में सेवा करते हुए अशान्ति, खिन्नता, एवं हाय-हाय उत्पन्न हुआ करती थी, उसी के स्थान पर आपको प्रमोद, उल्लास एवं शान्ति - वह शान्ति - जिसका आस्वादन आप एक लम्बे समय तक करते रहेंगे — प्राप्त होगी। और आप के साथ ही रुग्ण मनुष्य भी अपूर्व शान्ति प्राप्त करेगा। क्योंकि मनोविज्ञान का नियम है कि हम जिस सहृदयता से दूसरों के साथ व्यवहार करेंगे - उसका प्रत्यक्ष या परोक्ष प्रभाव उस पर पड़े बिना रह नहीं सकता।

इसके साथ ही एक सैद्धान्तिक रहस्य भी छिपा हुआ है और वह यह कि यदि आए हुए कर्मोदय को शांतिपूर्वक हंसते-हंसते सह लिया जायगा - तो पुरातन कर्म तो झड़ जायगा और तत्काल - फलोत्पादक नवीन कर्म नहीं बंधेगा। इसके विपरीत - यदि कर्मोदय को हाय-हाय के साथ सहा जायगा - तो आज भी अशान्ति के समुद्र में गोता खाना पड़ेगा और भविष्य के लिए भी ऐसे-वैसे ही कर्म बांध लेंगे - जिससे कि इसी प्रकार की हाय-हाय में पड़ना पड़ेगा।

फलतः — यही श्रेयस्कर है कि आई हुई परिस्थिति का शान्तिपूर्वक ही मुकाबिला किया जाय।